अपथ का पथ

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती लाडनूं

अपथ का पथ

जैन विश्व भारती
लाडनूं - 341306 (राजस्थान)

अपथ का पथ

—आचार्य महाप्रज्ञ

संपादन—मुनि धनंजय कुमार

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रकाशक
जैन विश्व भारती
लाडनूं - 341306 (राजस्थान)

मूल्य—पन्द्रह रुपये

कम्प्यूटर एवं मुद्रक
खुशबू ऑफसेट प्रिन्टर्स
41, एकता मार्ग, घाटगेट रोड़,
आदर्श नगर, जयपुर।
फोन : 609038

प्रस्तुति

प्रेक्षाध्यान अध्यात्म का प्रयोग है। उसकी भावना को जनता तक पहुंचाने के लिए प्रेक्षाध्यान नामक मासिक पत्र प्रकाशित हो रहा है। उसका प्रारंभ आगम-वाणी और प्रेक्षा सूत्र से होता है। कुछ महीनों तक अध्यात्म की वर्णमाला के रूप में अध्यात्म की बात लिखी गई। उसके बाद ''प्रेक्षासूत्र'' शीर्षक से कुछ आ रहा है। आचारांग के सूक्तों पर लिखा गया संकलित होकर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत हो रहा है।

❑ आचार्य महाप्रज्ञ

दिनांक : 29-6-98

लाडनूं

अनुक्रमणिका

		पेज नं.
1.	अनन्य दर्शन	1
2.	दर्शन-शक्ति का नया आयाम	2
3.	द्रष्टा का व्यवहार	3
4.	कुशल का कौशल	4
5.	मूल्यवान क्षण	5
6.	अध्यात्म का शास्त्र	6
7.	अग्र और मूल का विवेक	7
8.	अमृत्व का सूत्र	8
9.	अपथ का पथ	9
10.	परमदर्शी बनो	10
11.	समाधी का मूल स्रोत	11
12.	गति आगति का विज्ञान	12
13.	राग और विराग का संतुलन	13
14.	अस्तित्व और पर्याय	14
15.	भाग्य की कुञ्जी	15
16.	साधना की भूमिकाएं	16
17.	अध्यात्म का रहस्य	17
18.	पश्यक् : अपश्यक्	18
19.	अभय का मंत्र	19
20.	वह ज्ञानी है	20
21.	आसक्ति और उपयोगिता	21
22.	परिज्ञा से टूटती है मूर्च्छा	22
23.	दर्शन का मूल व संशय	23
24.	दुःख मुक्ति का उपाय	24
25.	लगाम को संभालो	25
26.	समस्या है आकर्षण	26
27.	संधान	27

28.	कौन करता है धर्म	28
29.	मन को बाहर मत जाने दो	29
30.	उपदेश नहीं है द्रष्टा के लिए	30
31.	वह है मेधावी	31
32.	मुक्ति इसी क्षण में	32
33.	धर्म का अर्थ	33
34.	संधि को देखो	34
35.	कहां है चेतना का आवास?	35
36.	पदार्थ से मुक्त बनो	36
37.	अप्रमाद और शान्ति	37
38.	संधि-दर्शन	38
39.	रहस्यपूर्ण सूत्र	39
40.	अप्रमाद से होता है प्रमाद का विलय	40
41.	मौलिक अधिकार का उल्लंघन न करें	41
42.	भय है प्रमत्त को	42
43.	दोहरी मूर्खता	43
44.	जागता है ज्ञानी	44
45.	कौन करता है दुःख का सृजन	45
46.	अहेतुक नहीं है आतुरता	46
47.	दुःख है संवेदन में	47
48.	अमर है आत्मा का विदेह अस्तित्व	48
49.	दुर्लंध्य है काम	49
50.	क्या बढ़ सकता है जीवन ?	50
51.	मानवीय स्वभाव	51
52.	सरल नहीं है काम का अतिक्रमण	52
53.	लोक की विपश्यना करो	53
54.	काम का जाल	54
55.	जैसा भीतर वैसा बाहर	55
56.	मतिमान बनो	56

अनन्य-दर्शन

चक्षुष्मान् !

आत्मा को देखो, अन्य को मत देखो।

जो अन्य है वह तुम नहीं हो।

उससे तुम परिचित भी नहीं हो।

अपरिचित के साथ इतना संबंध, इतनी मैत्री आश्चर्य है।

क्या यह कम आश्चर्य है—तुम जो हो, उसे नहीं देखते, अपने आपको नहीं देखते।

तुम अन्य को देखते हो इसीलिए उसमें रमण करते हो। उसके प्रति तुम्हारा आकर्षण है। अपने प्रति कोई आकर्षण नहीं है।

तुम्हारी आत्मा तुम से अनन्य-अभिन्न है। अभिन्न की उपेक्षा और भिन्न का समादर, यह कैसा विवेक है ?

साधक वह है, जो अनन्य को देखता है। जो अनन्य को देखता है, वह अपने घर में रहता है, दूसरों के घर को देख कभी नहीं ललचाता।

इस सत्य का उद्गान है—

जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे ।
जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी ॥

जो अनन्य को देखता है, वह अनन्य में रमण करता है।

जो अनन्य में रमण करता है, वह अनन्य को देखता है।

1 मार्च, 1993
पड़िहारा

दर्शन-शक्ति का नया आयाम

चक्षुष्मान् !

देखने का साधन है—चक्षु । चक्षु की चार अवस्थाएं हैं—

- निमेष
- अनिमेष
- अर्द्ध निमीलित
- निमीलित

निमेष दृष्टि के समय पलक झपकती है ।

अनिमेष दृष्टि के क्षण में पलक का झपकना बंद हो जाता है ।

अर्द्ध निमीलित दृष्टि के क्षण में आँखें आधी खुली रहती हैं और आधी बन्द ।

निमीलित अवस्था में आँखें पूर्णतः बन्द हो जाती हैं ।

भगवान महावीर अनिमेष प्रेक्षा का प्रयोग करते थे । वे लम्बे समय तक खुली आँख से एक वस्तु को देखते रहते ।

इस अनिमेष प्रेक्षा के प्रयोग ने उनकी दर्शन शक्ति को नए आयाम दिए ।

अभ्यास करते-करते वे आत्मदर्शी अथवा सर्वदर्शी बन गए ।

चक्षु की तेजस्विता बढ़ गयी ।

बच्चे उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर विस्मित हो जाते । विस्मय की भाषा में बोल उठते—आओ, देखो इन आँखों को, जिनमें से प्रकाश की रश्मियां निकल रही हैं ।

आयतचक्खू लोगविपस्सी
अदुपोरिसिं तिरियं भित्तिं, चक्खुमासज्ज अंतसोझाइं-
अह चक्खुभीया सहिया, तं हंता हंता बहवे कंदिंसु ॥

संयत- चक्षु लोक-दर्शी होता है ।

भगवान् महावीर प्रहर-प्रहर तक आँखों को अपलक रख तिरछी भींत पर मन को केन्द्रित कर ध्यान करते थे । (लम्बे समय अपलक रही आँखों की पुतलियां ऊपर की ओर चली जाती) उन्हें देखकर विस्मित हुई बच्चों की टोली ''हंत ! हंत ! कहकर चिल्लाती- दूसरे बच्चों को बुला लेती ।

1 अप्रेल, 1993, सरदार शहर

द्रष्टा का व्यवहार

चक्षुष्मान् !

आँख वाले बहुत हैं पर
वे विरल जो देखते हैं।

आचारांग का पश्यक् कोरा सचक्षु नहीं है। वह द्रष्टा है।

द्रष्टा वह होता है, जिसका अंतश्चक्षु उद्घाटित हो जाता है।

उसका साक्ष्य होता है उसका व्यवहार।

वह खाता है पर भोजन उसे कभी नही खाता।

वह बोलता है पर वाणी उस पर आक्रमण नहीं करती।

वह सोचता है पर चिन्तन उसके लिए कभी सिरदर्द नहीं बनता, तनाव पैदा नहीं करता।

उसका सारा जीवन व्यवहार बदल जाता है।

वह महल में रह सकता है पर उसके दिमाग में कभी महल नहीं रहता।

भगवान महावीर ने इस सत्य का उद्घाटन इन शब्दों में किया—***अण्णहा णं पासह परिहरेज्जा।***

उपाध्याय यशोविजयजी ने इसका तात्पर्यार्थ लिखा है—

आतुरैरपि जड़ैरपि साक्षात्,
सुत्यजा हि विषयाः न तु रागः।
ध्यानवांस्तु परम द्युतिदर्शी,
तृप्तिमाप्य न तमृच्छति भूयः॥

एक बीमार और एक जड़ व्यक्ति विषय को छोड़ सकता है किन्तु वह उसके प्रति होने वाले राग को नहीं छोड़ पाता। द्रष्टा वह है, जो विषय वस्तु के प्रति होने वाले राग या आसक्ति को छोड़ दे।

1 मई, 1993
रतनगढ़

कुशल का कौशल

चक्षुष्मान् !

मार्ग की खोज सत्य खोज है।

मार्ग वह है, जिस पर चलकर मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

द्रष्टा होने का एक मार्ग है, उसका अवबोध वीतराग से है। जिसने इस मार्ग पर चरण रखा, वह कुशल हो गया।

कुशल का कौशल तब बोलता है, जब वह रोटी खाए, किन्तु रोटी उसे न खाए। पानी पीए किन्तु पानी उसे न पीए।

एक अपश्यक् भी रोटी खाता है और पश्यक् भी खाता है। एक अपश्यक् भी पानी पीता है और पश्यक् भी पानी पीता है।

दोनों मनुष्य। रोटी और पानी—दोनों पदार्थ। दोनों के बीच भेदरखा खींचता है—लेप

रोटी के साथ प्रिय या अप्रिय संवेदन जुड़ा, रोटी केवल रोटी नहीं रही, वह लेप बन गया।

कुशल का कौशल यही है कि वह राग-द्वेष की संवेदना से ऊपर उठा होता है।

उसके लिए रोटी केवल रोटी रहती है, लेप नहीं बनती।

आचारांग का कुशल कहीं लिप्त नहीं होता।

एस मग्गे आरिएहिं पवेइए।
जहेत्थ कुसले णोवलिपिज्जासि त्ति बेमि।

1 जुलाई, 1993
राजलदेसर

मूल्यवान् क्षण

चक्षुष्मान् !

चैतन्य की धारा बाहर की ओर प्रवाहित हो रही है। उसे अंतर की ओर प्रवाहित करो।

स्थूल शरीर—औदारिक शरीर की क्रिया और स्पंदन का साक्षात् करो।

जो वर्तमान क्षण में शरीर में घटित होने वाले सुख-दुखः के स्पन्दनों को देखता है, वह वर्तमान क्षण का अन्वेषण करता है।

जो वर्तमान क्षण का अन्वेषण करता है, वह अप्रमत्त हो जाता है।

इस स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर है, जिसका नाम है तैजस शरीर।

उसके भीतर सूक्ष्मतर शरीर है, जिसका नाम है कर्म शरीर।

उसके भीतर है आत्मा।

स्थूल-शरीर के दर्शन का अभ्यास जैसे-जैसे परिपक्व होता है, वैसे-वैसे चेतना सूक्ष्म शरीर के दर्शन की ओर आगे बढ़ेगी।

सूक्ष्म शरीर के दर्शन का अभ्यास परिपक्व होकर सूक्ष्मतर शरीर के स्पन्दनों का साक्षात् कराएगा।

सूक्ष्मतर शरीर के स्पंदनों का अभ्यास पुष्ट बनते ही आत्म-साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

आचारांग का विधि सूत्र है—

जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणेत्ति मन्नेसि।

इस शरीर का यह वर्तमान क्षण है— इस प्रकार अन्वेषण करने वाला अप्रमत्त होता है।

1 अगस्त, 1993
राजलदेसर

अध्यात्म का शास्त्र

चक्षुष्मान् !

हमारे पास कान है। वह शब्द को सुनता है। हमारे जगत् का एक भाग है शब्द।

हमारे पास आँख है। वह रूप को देखती है। हमारे जगत् का एक भाग है रूप।

हमारे पास नाक है। वह गन्ध का अनुभव करता है। हमारे जगत् का एक भाग है गंध।

हमारे पास जीभ है। वह रस का अनुभव करती है। हमारे जगत् का एक भाग है रस।

हमारे पास त्वचा है। वह स्पर्श का अनुभव करती है। हमारे जगत् का एक भाग है स्पर्श।

जो इनसे परे जाकर नई दुनिया को खोज लेता है, वह आत्मवान् है, ज्ञानी है, शास्त्रज्ञ है, धर्मज्ञ है और ब्रह्मवेत्ता है।

प्रिय अप्रिय संवेदनों में उलझा रहने वाला व्यक्ति शास्त्र को पढ़ता हुआ भी शास्त्रज्ञ नहीं बनता, शास्त्र के मर्म को नहीं पकड़ पाता।

भीम ने मर्म को पकड़ा, दुर्योधन पर विजय पा ली।

अध्यात्म का शास्त्र इन्द्रियातीत चेतना का शास्त्र है। जिसे यह मर्म उपलब्ध हुआ, वह शास्त्रज्ञ बन गया, आत्मज्ञ बन गया।

यही है निर्विकल्प समाधि।

आचारांग के इस सूक्त का अनुशीलन करो

जस्सि मे सद्दा य रूवा य गंधा य रसा य फासा य अभिसमन्नागया भवंति से आयवं नाणवं वेयवं धम्मवं बंभवं।

जो पुरुष इन शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्शों को भली-भाँति जान लेता है उनमें राग-द्वेष नहीं करता, वह आत्मवान्, ज्ञानवान, वेदवान, धर्मवान् और ब्रह्मवान् होता है।

1 सितम्बर, 1993
राजलदेसर

अग्र और मूल का विवेक

चक्षुष्मान् !

विवेचन करो, गहरे में उतर कर देखो—समस्या का मूल क्या है ?

जो सामने है, उसका समाधान करना आवश्यक समझते हो और करते भी हो।

बहुत बार समाधान असमाधान बन जाता है। इसलिए कि बढ़ती हुई शाखा और प्रशाखा को काट दिया किन्तु जड़ को नहीं काटा।

समस्या का मूल है मोह, मूर्च्छा।

चेतना मूर्च्छा से ग्रस्त है।

तुम शामक टिकिया लेकर तनाव मिटाना चाहते हो। क्या तनाव-मुक्ति संभव होगी ?

तनाव-मुक्ति का क्षणिक आभास और अधिक तनाव को उभार देगा।

अग्र का समाधान न करो, यह वक्तव्य नहीं है।

वक्तव्य यह है—अग्र पर रुको मत, मूल तक पहुंचो।

अग्र की समस्या के साथ मूल की समस्या का समाधान करो।

यह समस्या के समाधान का सर्वांगीण दृष्टिकोण है।

केवल दीया मत जलाओ।

ध्यान केन्द्रित करो—आँख की ज्योति सुरक्षित रहे।

आँख की ज्योति और विद्युत् की ज्योति दोनों हों तभी हो सकता है अंधकार की समस्या का समाधान।

समाधान की इस सर्वांगीण भाषा में महावीर ने कहा था—

अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे।

हे धीर ! तू अग्र और मूल का विवेक कर।

1 अक्टूबर, 1993
राजलदेसर

अमृत्व का सूत्र

चक्षुष्मान् !

अमृत होना भारतीय मानस की चिरन्तन आकांक्षा है।

मनुष्य मरणधर्मा है।

वह जन्म और मृत्यु के वलय में अवस्थित है।

जीवन इष्ट है और मरण अनिष्ट।

अनिष्ट इष्ट से जुड़ा हुआ है।

अनिष्ट को विलग कर इष्ट को पाने का कोई उपाय नहीं है। इस विवशता ने एक नया मार्ग खोजा, वह है अमृत, जहां जन्म और मरण—दोनों नहीं हैं।

अजन्मा हुए बिना कोई अमर होता तो आदमी जन्म को पसंद करता किन्तु अजन्मा और अमर—दोनों में व्याप्ति संबंध है, इसलिए उसने अजन्मा पद को भी स्वीकार किया। इस स्वीकृति ने जन्म और मरण के पंख काट डाले।

जन्म के दो पंख हैं—राग और द्वेष, प्रियता और अप्रियता का संवेदन।

अमृत्व की आस्था ने इनकी उड़ान को बंद कर दिया। मनुष्य वीतराग बन गया।

महावीर से पूछा—क्या कोई मनुष्य अमृत हो सकता है ?

'हां, हो सकता है।'

भंते ! कौन हो सकता है ?'

महावीर ने कहा—***एस मरणा पमुच्चति***—यह मनुष्य मरण से मुक्त हो सकता है क्योंकि यह वीतराग है।

1 नवम्बर, 1993
राजलदेसर

अपथ का पथ

चक्षुष्मान् !

वही पहुंच पाता है अपने गंतव्य तक, जिसे पथ मिला है। मंजिल दूर है। इसका तात्पर्य है—पथ दूर है। पथ मिला, फिर मंजिल दूर कहां है ?

जो अपने तक पहुंचाए, वह अपथ का पथ है। उसे खोजना दुर्लभ, पाना और अधिक दुर्लभ।

आदमी चलता है, पशु चलते हैं, वाहन चलते हैं, पथ बन जाता है।

धरती पर पथ बनता है। जल में भी पथ बनता है। जलपोत उसी पर चलते हैं। आकाश में भी पथ बनता है। प्रत्येक वायुयान पथगामी है।

धरती, जल और आकाश में मनुष्य ने पथ खोज लिया है और उसके सहारे लक्ष्य तक पहुंच रहा है।

अपनी खोज धरती, जल और आकाश—तीनों से परे है।

इस खोज का शक्तिशाली माध्यम है—मुनित्व।

मुनि जानता है, मनन करता है। मनन पथ-निर्माण का उपादान बनता है।

ज्ञानी वह है, जो अपने बारे में सोचता है, अपने आपको जानने का यत्न करता है।

इसी सचाई को सामने रखकर महावीर ने कहा—जो मुनि है, उसने पथ देखा है—

से हु दिट्ठपहे मुणी।

1 दिसम्बर, 1993
राजलदेसर

परमदर्शी बनो

चक्षुष्मान् !

विकास की यात्रा अपरम से परम की ओर।

मनुष्य अपरम है। आत्मा परम है।

प्राणी जगत् में मनुष्य होना बहुत बड़ी उपलब्धि है पर वह परम नहीं है। आत्मा होना परम है।

परमदर्शी वह होता है, जो शरीर में आत्मा को खोजता है।

जिसकी चेतना शरीर तक सीमित है, उसका प्रस्थान मूर्च्छा या आसक्ति की दिशा में होता है।

आत्मदर्शी का प्रस्थान एकत्व की ओर होता है। इसी आध्यात्मिक अनुभूति का उदान है :—

एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

परम स्वभाव है।

आगम की भाषा में यह पारिणामिक भाव है।

जो पुरुष अपने पारिणामिक भाव को देखता है, वह बंधन से मुक्त हो जाता है।

आत्मा सतत परिणमनशील है। वह परिणमन के वीथि-चक्र के मध्य रहकर भी समुद्र से पराङ्मुख नहीं होती।

इस सत्य की अनुभूति परम-दर्शन है। इसीलिए महावीर ने कहा—परमदर्शी बनो।

लोयंसि परमदंसी।

1 जनवरी, 1994
जैन विश्व भारती

समाधि का मूल स्रोत

चक्षुष्मान् !

अकेला वह होता है, जो परम को देखता है।

प्रत्येक मनुष्य सामाजिक है, वह सामाजिक जीवन जीता है।

पौद्गलिक स्तर पर कोई अकेला हो नहीं सकता, जी नहीं सकता। अकेला होने की भूमिका केवल चेतना के स्तर पर ही निर्मित होती है।

आत्मा अकेली है। उसका किसी दूसरे के साथ सम्बन्ध नहीं है। वह पुद्गल-दर्शन के क्षण में दूसरे से घुल-मिल जाती है और चैतन्य-दर्शन के क्षण में अकेली हो जाती है।

इसी सत्य के आधार पर महावीर ने कहा—जो परमदर्शी है, वह विविक्तजीवी होता है। वह समुदाय में रहता हुआ भी चेतना के स्तर पर अकेला जीता है।

क्रोध आदि संवेग उफनते रहते हैं। नाला उफन जाता है, जब पीछे से पानी का पूर आता है। संस्कार का पूर पानी के पूर से कहीं अधिक वेगवान् और शक्तिशाली होता है।

जो चेतना के स्तर पर अकेला रहता है, वही उपशान्त रह सकता है।

उपशान्त व्यक्ति की प्रवृत्ति ही समीचीन हो सकती है। सहिष्णुता की क्षमता का विकास उपशान्त व्यक्ति में ही सम्भव बनता है। संयम का विकास भी उपशान्त पुरुष में सम्भव है। जिसकी चेतना में उपशम का निर्झर प्रवाहित है, वह मौत से घबराता नहीं है। उसमें न जीने की चाह होती है और न मरने की। वह जीता है समाधि के साथ और मृत्यु के क्षण में भी उसकी समाधि बनी रहती है।

समाधि का मूल स्रोत है—परम-दर्शन। इसीलिए महावीर ने कहा—

लोयंसि परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते समिए सहिते सया जए कालकंखी परिव्वए।

जो लोक में परम को देखता है, वह विविक्त जीवन जीता है। वह उपशान्त, सम्यक् प्रवृत्त, सहिष्णु और सदा अप्रमत्त होकर जीवन के अंतिम क्षण तक परिव्रजन करता है।

1 फरवरी, 1994

सुजानगढ़

गति आगति का विज्ञान

चक्षुष्मान् !

एक विशाल आयोजन।

हजारों की भीड़।

गति आगति हो रही है।

कोई आ रहा है, कोई जा रहा है।

आने जाने का पता चल रहा है।

कौन कहां से आ रहा है, कौन कहां जा रहा है, इसका पता नहीं है।

संसार बहुत बड़ा मेला है, बहुत बड़ा आयोजन है।

कोई आता है, उसका पता लगता है।

कोई जाता है, उसका भी पता चलता है।

कौन कहां से आया और कौन कहां चला गया, यह अज्ञात है।

ध्यान का एक सूत्र दिया गया—अपने आपको देखो।

ध्यान के गहरे में जाओ और इसका पता लगाओ—कहां से आया हूं और कहां जाऊंगा ?

यह आगति और गति का विज्ञान व्यक्ति के आचरण का नियामक बनता है। सोचने का अवसर मिलता है—मैं वर्तमान स्थिति से ह्रास की स्थिति में न जाऊं।

विकास के बाद फिर ह्रास की ओर लौटना किसी को प्रिय नहीं है। इसलिए आवश्यक है ध्यान की गहराई में उतरना और आवश्यक है आगति एवं गति का साक्षात् करना।

आगतिं गतिं परिण्णाय।

1 मार्च, 1994
सीकर

राग और विराग का संतुलन

चक्षुष्मान्

कषाय से संचालित जीवन के दो छोर हैं—एक राग और दूसरा द्वेष।

राग जागता है, प्रिय संवेदन उभर जाते हैं।

द्वेष जागता है, अप्रिय संवेदन उभर जाते हैं।

जो दृश्यमान है, वह इसी द्वन्द्व की परिक्रमा कर रहा है। इस परिक्रमा की समाप्ति का पहला बिन्दु है आगति और गति का परिज्ञान।

आगति और गति का साक्षात्कार करने वाला दृश्यमान जगत् से प्रस्थान कर अदृश्यमान बन जाता है। न राग छूटता है और न द्वेष। न प्रिय संवेदन उभरता है और न अप्रिय संवेदन।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त आचार-शास्त्र को नया आयाम देने वाला सिद्धांत है।

वर्तमान जीवन यदि समाप्ति रेखा है तो करणीय और अकरणीय की सीमा छोटी बन जाती है। उसकी विशालता का हेतु है पुनर्जन्म।

शरीर और पदार्थ का बन्धन सूत्र है राग।

रागात्मकता सामाजिक जीवन का अनिवार्य सेतु है किन्तु विराग रहित राग में समस्या, कष्ट और दुःख अनामंत्रित आ जाते हैं।

साधक विराग की ओर प्रस्थान करता है। सामाजिक प्राणी के लिए भी आवश्यक है राग और विराग का संतुलन।

दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणे

1 अप्रेल, 1994
सी.स्कीम,
जयपुर

अस्तित्व और पर्याय

चक्षुष्मान् !

अस्तित्व छेदन, भेदन, दहन और हनन से परे है। आत्मा के विषय में उल्लेख है—शरीर के हत होने पर भी वह हत नहीं होता—न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

परिवर्तन पर्याय है। वह अस्तित्व का उपजीवी है।

जो छिन्न-भिन्न, दग्ध और हत होता है, वह पर्याय होता है।

यह पर्याय ध्यान करने वाले के लिए आलंबन बनता है।

ध्याता प्रारम्भ काल में अछिन्न, अभिन्न, अदाह्य और अहत का साक्षात्कार नहीं करता।

वह शरीर-प्रेक्षा के गहन अभ्यास काल में अनुभव करता है कि शरीर में कुछ छिन्न हो रहा है, कुछ भिन्न हो रहा है और कुछ हत-प्रहत हो रहा है।

पर्याय-ध्यान धर्म ध्यान अथवा धर्मों का ध्यान है।

धर्म के ध्यान का परिपक्व अभ्यास धर्मी को ध्यान की दिशा में अग्रसर करता है।

यह प्रक्रिया है खण्ड से अखण्ड की ओर प्रस्थान की।

आत्मा धर्मी है। उसमें अनेक धर्म हैं, अनेक पर्याय हैं।

पुद्गल संयुक्त आत्मा में शरीर है, वाणी है, मन है। उसमें परिवर्तन का चक्र चलता रहता है।

परिवर्तन से अपरिवर्तन की भूमिका पर आरूढ़ होकर जो अनुभव करता है, उसकी अनुभूति महावीर की वाणी में इस प्रकार है।

से ण छिज्जई, ण भिज्जइ, ण डज्झइ, ण हम्मइ
कं च णं सव्व लोए।

1 मई, 1994
सिधरावली

भाग्य की कुंजी

चक्षुष्मान् !

पूर्व और अपर—यह काल का चक्र है।

अपर में जीने वाले कुछ लोग पूर्व या अतीत की स्मृति नहीं करते। उन्हें पता नहीं होता—अतीत कैसा था ? भविष्य कैसा होगा ?

कुछ लोग मानते हैं—जैसा अतीत था वैसा ही भविष्य होगा। यह अपरिवर्तनवादी दृष्टिकोण है।

महावीर ने पुरुषार्थ के द्वारा परिवर्तन का प्रतिपादन किया। उनका साधना सूत्र था—स्मृति और कल्पना को अधिक महत्त्व मत दो, उन्हें सब कुछ मत मानो। वर्तमान की अनुपश्यना करो।

जो तथागत होते हैं, वे अतीत और भविष्य को छोड़कर वर्तमान का जीवन जीते हैं।

नियामक वर्तमान है। वर्तमान क्षण अतीत का परिष्कार कर सकता है, भविष्य को नया रूप दे सकता है।

जो कर्म किया हुआ है, वह वैसा ही फल देगा, यह प्रतिपादन सापेक्ष है। यदि पुरुषार्थ के द्वारा बदला नहीं जाता है तो कर्म के अनुरूप ही विपाक होगा।

पुरुषार्थ हमारे भाग्य की कुंजी है। वह कृत को भी बदल सकता है। साधना का यह शिखर सूत्र है।

अवरेण पुव्वं ण सरंति एगे, किमस्सतीतं किं वागमिस्सं ?
भासंति एगे इह माणवा उ, जमस्सतीतं जं आगमिस्सं ॥
णातीतमट्ठं न य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहागया उ।
विधूतकप्पे एयाणुपस्सी, णिज्झोसइत्ता खवगे महेसी ॥

1 जून, 1994
अध्यात्म साधना केन्द्र,
नई दिल्ली

साधना की भूमिकाएं

चक्षुष्मान् !

एक शिष्य आचार्य के उपपात में गया और पंचांग वंदन कर बोला—'भंते ! कोई भव्य पुरुष धर्म को सुन कर, पूर्व संयोगों को त्याग कर, इन्द्रियों और मन का उपशमन कर प्रव्रजित होता है। क्या इसके पश्चात् भी उसके लिये कुछ करणीय अवशेष रहता है या नहीं !'

आचार्य बोले—'वत्स ! प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। यह तो साधना का पहला चरण है। प्रव्रज्या-ग्रहण के पश्चात् साधक को तीन भूमिकाएं पार करनी होती हैं। इनमें शरीर और कर्म का पीडन किया जाता है। उसके दो उपाय हैं—श्रुत और तप।'

पहली है आपीडन भूमिका। इसमें श्रुत के अध्ययन के श्रम से तथा श्रुतोपयोगी तप के आचरण से आपीडन होता है।

दूसरी है प्रपीडन भूमिका। इसमें अनियत निवास-काल, यात्रा, धर्मोपदेश, शिष्यों के संवर्धन तथा अध्यापन और तप के आचरण में प्रकृष्ट पीडन होता है।

तीसरी है निष्पीडन भूमिका। इसमें संलेखना के कारण उत्कृष्ट पीडन होता है।

पहली भूमिका का कालमान है—चौबीस वर्ष का, दूसरी और तीसरी भूमिका का कालमान है बारह-बारह वर्ष का।

आवीलए पवीलए निप्पीलए जहित्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं।

1 जुलाई, 1994
अध्यात्म साधना केन्द्र,
नई दिल्ली

अध्यात्म का रहस्य

चक्षुष्मान् !

व्यक्ति का जीवन प्रसंगों, घटनाओं, निमित्तों और परिस्थितियों की प्रलंब श्रृंखला है।

प्रिय प्रसंग आनन्द देता है और अप्रिय प्रसंग अरति अथवा दुःख। यह हमारा व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

वास्तविक दृष्टिकोण यह है कि कोई भी प्रसंग न सुख देता है और न दुःख। उसे ग्रहण करने वाला सुख और दुःख पैदा करता है, सुखी और दुःखी बन जाता है।

महावीर ने अध्यात्म के इस रहस्य को पुरस्कृत किया और कहा--

क्या है अरति और क्या है आनंद ? तुम्हारी पकड़ ही है अरति और तुम्हारी पकड़ ही है आनंद।

तुम घटना, प्रसंग और निमित्त को पकड़ो मत। तुम सुख और दुःख के चक्र के ऊपर उठ जाओगे। सदा चैतन्य में, आत्मानुभूति में लीन रहोगे।

का अरई ? के आणंदे ? एत्थंपि अग्गहे चरे।
सव्वहासं परिच्चज्ज, आलीणगुत्तो परिव्वए॥

1 अगस्त, 1994
अध्यात्म साधना केन्द्र,
नई दिल्ली

पश्यक् : अपश्यक्

चक्षुष्मान् !

मनुष्य दो श्रेणियों में विभक्त है !

एक श्रेणी है पश्यक् (द्रष्टा) की और दूसरी श्रेणी है अपश्यक् (अद्रष्टा) की।

पश्यक् वीतराग-चरित वाला होता है।

अपश्यक् राग-चरित और द्वेष-चरित वाला होता है।

राग-चरित और द्वेष-चरित का तात्पर्यार्थ है पक्षपात।

पक्षपाती मनुष्य उपाधि के रंग से रंजित होता रहता है जैसे स्फटिक उपाधि के अनुरूप बहुरंगी बन जाता है।

पश्यक् तटस्थ होता है। वह किसी दूसरे के रंग से अनुरक्त नहीं होता, अपने स्वरूप में स्थित होता है।

जो देखता है, उसका भोक्ता भाव कम होता चला जाता है इसलिए वह घटना, दृश्य और परिस्थिति से बंधता नहीं।

ज्ञान प्रबल होता है तब घटना का प्रभाव दुर्बल बन जाता है।

ज्ञान दुर्बल होता है तब घटना का प्रभाव प्रबल बन जाता है।

शिष्य ने पूछा—भंते ! क्या पश्यक् के उपाधि होती है ?

महावीर ने कहा—नहीं होती।

किमत्थि उवाही पासगस्स ण विज्जई ?
णत्थि !

1 सितम्बर, 1994
अध्यात्म साधना केन्द्र
नई दिल्ली

अभय का मंत्र

चक्षुष्मान् !

अपने आप में रहना अभय है।

भय है अपने से बाहर जाना।

यह मेरा है—व्याकरण की भाषा में इसे सम्बन्ध कहा जाता है और अध्यात्म की भाषा में इसका नाम है भय।

जितना जितना मेरापन बढ़ता है, उतना उतना बाहर की ओर फैलाव होता है।

जितना जितना बाहर की ओर फैलाव होता है, उतना-उतना ही भय बढ़ता है।

इसीलिए महावीर ने कहा—अपरिग्रही बनो, अपने अस्तित्व की ओर लौट आओ।

परिग्रह हो और भय न हो, यह कब संभव है ? इसी सत्य को सामने रखकर महावीर ने कहा था—

एतदेवेगेसिं महब्भयं भवति, लोगवित्तं च णं उवेहाए।

क्या कोई शरीरधारी अपरिग्रही हो सकता है ?

यदि ममत्व की चेतना है, पदार्थ के साथ मेरापन का भाव जुड़ा हुआ है तो नहीं हो सकता।

पदार्थ का उपयोग करना और उसके साथ मेरापन का भाव जोड़ना एक बात नहीं है। इस सचाई को समझ लेना ही अभय का मूलमंत्र है।

1 अक्टूबर, 1994
अध्यात्म साधना केन्द्र
नई दिल्ली

वह ज्ञानी है

चक्षुष्मान् !

मनुष्य मनुष्य है।

पदार्थ पदार्थ है।

न मनुष्य पदार्थ के लिए बाधा है और न पदार्थ मनुष्य के लिए बाधा है। दोनों अपने-अपने अस्तित्व में स्वतंत्र हैं।

पदार्थ जीवन चलाने के लिए आवश्यक है, उपयोगी है इसलिए मनुष्य और पदार्थ में सम्बन्ध स्थापित हो गया है।

सम्बन्ध उपयोगिता का है। वह संग या आसक्ति में बदल गया। अब वह मात्र उपयोगी नहीं है। वह आसक्ति का हेतु बन गया।

उपयोगी हो, वह भी जरूरी है और अनुपयोगी उससे अधिक जरूरी है। आंतरिक मोह का उसके साथ गठबंधन हो गया। उपयोगिता बहुत पीछे रह गई।

जितनी आवश्यकता उतना पदार्थ—यदि यह संकल्पना होती तो मनुष्य पदार्थाभिमुख नहीं होता, वह अपनी चेतना के अभिमुख रहता।

पदार्थ के प्रति आसक्ति अपने ही अज्ञान के कारण हो रही है।

अपने अस्तित्व का ज्ञान पदार्थ के भार के नीचे दब गया है। इसलिए शास्त्र का भार ढोने वाले व्यक्ति को भी ज्ञानी कहना मुश्किल है।

ज्ञानी वही है, जो पदार्थ को मात्र उपयोगी मानता है।

इस सारी अवधारणा को महावीर ने एक सूत्र में कहा—

ए ए संगे अविजाणओ।

अज्ञानी के लिए पदार्थ संग है, आसक्ति है।

1 नवम्बर, 1994
अध्यात्म साधना केन्द्र
नई दिल्ली

आसक्ति और उपयोगिता

चक्षुष्मान् !

इस जगत् में कोई व्यक्ति अकेला नहीं है।

भले वह महानगर में हो, भीड़ में घिरा हुआ हो अथवा हिमालय के उच्चतम शिखर पर आरोहण कर रहा हो।

मन में भीड़ है विचारों की और भाव जगत् में भीड़ है संवेगों की, संस्कारों की।

अनेकान्त की भाषा में केवल निषेध नहीं, स्वीकार भी है। मनुष्य अकेला रह सकता है यदि वह ज्ञानी है, पथ के पार देखने वाला है। वह इस पदार्थ जगत् को भिन्न दृष्टि से देखता है।

देखने के दो कोण हैं—आसक्ति और उपयोगिता।

अकेला वह हो सकता है, जिसकी दृष्टि में पदार्थ के साथ मात्र उपयोगिता का सम्बन्ध है, उसे अपना मानने का विभ्रम नहीं है।

पदार्थ को आसक्ति के कोण से देखने वाले में अपनेपन की भावना प्रबल हो जाती है, उपयोगिता गौण।

जो पदार्थ से जुड़ गया, वह अकेला नहीं हो सकता।

इस सत्य का उद्भावन महावीर ने किया था—

से हु एगे संविद्धपहे मुणी अण्णहा लोगमुवेहमाणे।

ज्ञानी मनुष्य ही अकेला रह सकता है, जो पदार्थ जगत् को अनासक्ति की दृष्टि से देखता है।

1 जनवरी, 1995
अध्यात्म साधना केन्द्र
नई दिल्ली

परिज्ञा से टूटती है मूर्च्छा

चक्षुष्मान् !

सोपान पंक्ति से आदमी ऊपर भी चढ़ता है, नीचे भी उतरता है।

मूर्च्छा एक सोपान पंक्ति है।

उतार और चढ़ाव—दोनों उसके सहारे चलते हैं।

जब तक मूर्च्छा है तब तक आरोह और अवरोह का क्रम बना रहता है।

परिज्ञा के बिना मूर्च्छा नहीं टूटती और मूर्च्छा टूटे बिना आरोह-अवरोह का क्रम बन्द नहीं होता।

पदार्थ ज्ञान कितना ही बढ़ जाए, वह मूर्च्छा के चक्र को नहीं तोड़ पाता। उसको तोड़ने का उपाय है आत्म-ज्ञान।

हेय और उपादेय का विवेचन और विश्लेषण करने पर परिज्ञा का विकास होता है।

उपादेय कुछ नहीं है।

आत्मा अपने आप में परिपूर्ण है।

मूर्च्छा विजातीय है।

उसने चेतना में अपना प्रवेश द्वार बना लिया है।

उसे बाहर करो और दरवाजा बंद। श्रेणी (सोपान पंक्ति) विश्रेणी बन जाएगी। उतार चढ़ाव समाप्त। फिर समतल ही समतल। यही सत्य महावीर की वाणी में उद्घाटित हुआ है—

विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए

ज्ञानी मनुष्य समत्व की प्रज्ञा से श्रेणी—मूर्च्छा की सोपान पंक्ति को छिन्न कर डाले।

1 फरवरी, 1995
अध्यात्म साधना केन्द्र
नई दिल्ली

दर्शन का मूल है संशय

चक्षुष्मान् !

संशय दर्शन का मूल है।

जिसके मन में संशय नहीं होता—जिज्ञासा नहीं होती, वह सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतम के मन में जब-जब संशय होता, तब वे भगवान् के पास जाकर उसका समाधान लेते।

संशयात्मा विनश्यति—संशयालु नष्ट होता है। इस पद में संशय का अर्थ संदेह है।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति—संशय का सहारा लिए बिना मनुष्य कल्याण को नहीं देखता। इस पद में संशय का अर्थ जिज्ञासा है।

संसार का अर्थ है—जन्म-मरण की परम्परा। जब तक उसके प्रति मन में संशय नहीं होता, वह सुखद है या दुःखद, ऐसा विकल्प उत्पन्न नहीं होता, तब तक वह चलता रहेगा। उसके प्रति संशय उत्पन्न होना ही उसकी जड़ में प्रहार करना है।

संसयं परिजाणतो, संसारे परिण्णाते भवति।
संसयं अपरिजाणतो, संसारे अपरिण्णाते भवति।

जो संशय को जानता है, वह संसार को जान लेता है—श्रेय का ज्ञान और हेय का परित्याग कर देता है।

जो संशय को नहीं जानता, वह संसार को नहीं जान पाता।

1 मार्च, 1995
हांसी

दुःख मुक्ति का उपाय

चक्षुष्मान् !

रोटी भूख बुझाने के लिए है।

यह रोटी का उपयोग है।

जब रोटी में मूर्च्छा हो जाती है, आसक्ति जुड़ जाती है तब रोटी भूख बुझाने के लिए नहीं होती, वह लोलुपता बढ़ाने के लिए हो जाती है। जो उपयोगी होती है, वह सताने लग जाती है, दुःख देने लग जाती है।

दुःख से मुक्ति का उपाय है—देखना।

महावीर ने कहा—यदि तुम दुःख से छुटकारा पाना चाहते हो तो संग को देखो, आसक्ति को देखो, मूर्च्छा को देखो।

तुम्हारे पास चक्षु है। उससे तुम पदार्थ को देखते हो।

पदार्थ पदार्थ है। वह दुःख नहीं देता।

दुःख देती है पदार्थ के प्रति होने वाली मूर्च्छा अथवा आसक्ति। उसे आँख से नहीं देखा जा सकता। उसे विवेक चक्षु से देखा जा सकता है।

उस विवेक चक्षु को उद्घाटित करने के लिए भगवान् महावीर ने तत्त्व बोध दिया—

तम्हा संगं ति पासह।

तुम दुःख से छुटकारा पाना चाहते हो इसलिए संग को देखो।

1 अप्रेल, 1995
रतनगढ़

लगाम को संभालो

चक्षुष्मान् !

मनुष्य की शाश्वत चाह है—दुःख से छुटकारा मिले।

उसकी पूर्ति के लिए मनुष्य ने अनेक उपाय खोजे। उनकी एक श्रृंखला बन गई।

आज भी खोज जारी है।

दुःख है। उससे छुटकारा पाने के लिए नए-नए उपाय खोजे जा रहे हैं।

पदार्थवादी अन्वेषकों ने दुःख को मिटाने वाले नए-नए पदार्थों को खोजा।

अध्यात्मवादी पश्यकों ने देखा—दुःख का उपादान बाहर नहीं है।

यदि वह बाहर होता तो पदार्थवादी लोग मनुष्य को पहले ही सुखी बना देते। पर ऐसा नहीं हुआ है।

खोज की दिशा बदली। भीतर का दरवाजा खुला, देखा—दुःख का उपादान अपने भीतर है और वह है इन्द्रियों की उन्मुक्त प्रवृत्ति। घोड़ा दौड़ रहा है। लगाम हाथ में नहीं है।

महावीर ने कहा—यदि दुःख से छुटकारा चाहते हो तो लगाम को संभालो। चेतना के उस जगत् में प्रवेश करो, जहां सुख-दुःख की भाषा को कोई नहीं जानता।

महावीर के इस स्वर का पुनरुच्चार है—

पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि।

पुरुष ! स्वयं का ही निग्रह कर, ऐसे दुःख मुक्त होगा तू।

1 मई, 1995
बीदासर

समस्या है आकर्षण

चक्षुष्मान् !

आकर्षण शब्द की ओर है तो शब्द मनुष्य को कभी सुख देगा, कभी दुःख।

शब्द का आकर्षण छूटने पर ही मनुष्य आंतरिक आनंद का अनुभव कर सकता है।

आकर्षण रूप की ओर है तो रूप उसे कभी सुख देगा, कभी दुःख।

रूप का आकर्षण छूटने पर ही मनुष्य आंतरिक आनन्द का अनुभव कर सकता है।

गंध, रस और स्पर्श के लिए भी यही चिन्तन और यही भाषा उपयुक्त है।

अरति से मुक्त वही हो सकता है, जो शब्द, रूप आदि का उपयोग करता है किन्तु उनसे आकृष्ट नहीं है।

जो खींचता है वह मनोबल का ह्रास करता है।

आकर्षण एक ही दिन में नहीं टूटता, उसके लिए अपेक्षित है दीर्घकालिक साधना।

इस सत्य को महावीर ने इन शब्दों में प्रकट किया—जो दीर्घकाल से अनाकृष्ट होने की साधना कर रहा है, उसे अरति क्यों सताएगी—

विरयं भिक्खुं रीयंतं, चिररातोसियं, अरती तत्थ किं विधारए।

1 जून, 1995
जैन विश्व भारती

संधान

चक्षुष्मान् !

आश्चर्य है—तुम इस मोहक वातावरण में सांस लेते हो फिर भी सदा प्रसन्न रहते हो। क्या तुम्हें अरति अभिभूत नहीं कर पाती ?

अध्यात्म के साधक ने समाधान के स्वर में कहा—मैं संधान करना जानता हूं और मैं संधान के प्रति जागरूक रहता हूं इसलिए मैं सदा प्रसन्न रहता हूँ।

जो टूटे धागे को जोड़ना जानता है, जो जागना जानता है, वह अरति से अभिभूत नहीं होता।

जीवन की गंगा का प्रवाह सदा एकरूप नहीं रहता।

कभी निर्मल और कभी मलिन।

मोह कर्म का क्षायोपशमिक भाव निर्मलता है।

मोह कर्म का औदयिक भाव मलिनता है।

जो पुरुष औदयिक भाव की मलिनता का संस्पर्श पाकर फिर से क्षायोपशमिक भाव की निर्मलता का संधान कर लेता है, उसके आस-पास अरति अपना डेरा नहीं डाल सकती, उसे अपना स्थायी निवास नहीं बना सकती।

साक्षी है महावीर का वचन—

संधेमाणे समुट्ठिए।

प्रतिक्षण धर्म का संधान करने वाले, वीतरागता की दिशा में अभ्युत्थान करने वाले व्यक्ति को अरति अभिभूत नहीं कर पाती।

1 जुलाई, 1995
जैन विश्व भारती

कौन करता है धर्म ?

चक्षुष्मान् !

प्रश्न है—धर्म कौन करता है ? दुःखी अथवा सुखी ?

एक अनुभव है—दुःखी धर्म करता है।

सूक्त बन गया—

दुःख में सुमिरण सब करै,
सुख में करै न कोय,
जो सुख में सुमिरण करै,
दुःख काहे को होय ॥

दूसरा अनुभव है—सुखी सम्पन्न आदमी ही धर्म कर सकता है। जो आर्त्त है, अभाव-ग्रस्त है, वह क्या धर्म करेगा ?

दोनों में सत्यांश है।

एकांतवादी एक सत्यांश को पकड़कर दूसरे सत्यांश का विखण्डन करता है। सत्यांश दुर्नय बन जाता है। वह सापेक्ष रहकर ही नय बन सकता है।

नय अनेकान्त का एकान्त है किन्तु सापेक्षता के सूत्र से बन्धा हुआ वह सम्यक् दृष्टिकोण बन जाता है।

इस सापेक्ष दृष्टिकोण के आधार पर महावीर ने कहा— दुःख से पीड़ित मनुष्य भी धर्म करता है और सुख से सम्पन्न मनुष्य भी धर्म करता है—

अट्टा वि संता, अदुवा पमत्ता।

1 अगस्त, 1995
जैन विश्व भारती

मन को बाहर मत जाने दो

चक्षुष्मान् !

तुम जागरूक रहो।

मन को घर से बाहर मत जाने दो।

वह बाहर जाकर भटक जाएगा।

तुमने लक्ष्य बनाया है महान् होने का।

तुम्हारी महानता स्वतंत्रता में है।

तुम स्वतंत्र हो, जब मन घर में है।

वह बाहर जाता है, तुम परतंत्र हो जाते हो, उसके पीछे-पीछे चलने लग जाते हो।

वह पदार्थ में आसक्त होता है, तुम भी आसक्त बन जाते हो।

वह तुम्हारे पीछे नहीं चलता, तुम उसके पीछे चलने लग जाते हो।

यदि तुम्हें महान् बनना है, स्वतंत्र रहना है तो बहुत जागरूक रहो और मन को घर से बाहर मत जाने दो।

महावीर का शिक्षा-पद यही उद्घोषित कर रहा है—

जे महं अबहिमणे।

मोक्षलक्षी पुरुष का घर संयम है। वह मन को असंयम की ओर न ले जाए।

1 सितम्बर 1995
जैन विश्व भारती

उपदेश नहीं है द्रष्टा के लिए

चक्षुष्मान् !

लक्ष्य तक पहुंचने के लिए आवश्यक है दिशादर्शन और अत्यावश्यक है पथ-दर्शन।

जो पश्यक् नहीं हैं, वह दिशा-दर्शन के बिना सही दिशा में नहीं जा सकता और सही पथ पर नहीं चल सकता।

आचार्य पूर्व दिशा है। शिष्य उसमें सदा उदय और प्रकाश का अनुभव करता है।

वह स्वयं अपथ है। उसमें से पथ का निर्माण होता है।

जो प्रकाश का उद्गम स्त्रोत और पथ का निर्माता होता है, वह द्रष्टा होता है।

उलट कर कहा जा सकता है- जो द्रष्टा होता है, वह प्रकाश का उद्गम स्त्रोत और पथ का निर्माता होता है।

द्रष्टा के लिए कोई उपदेश नहीं है, दिशा-दर्शन और पथ-दर्शन नहीं है।

जो समृद्धि का मार्ग बताए और स्वयं भीख मांगे, वह आस्था उत्पन्न नहीं कर सकता।

आस्था वही उत्पन्न कर सकता है, जो यथावादी-तथाकारी होता है।

इस भूमिका में उपदेश निरुद्देश्य हो जाता है।

इसी सत्य को भगवान् महावीर ने इन शब्दों में कहा-

उद्देसो पासगस्स णत्थि।

द्रष्टा के लिए कोई उपदेश नहीं है।

1 अक्टूबर, 1995
जैन विश्व भारती

वह है मेधावी

चक्षुष्मान् !

शब्द ससीम, तात्पर्य असीम ।

भाषा सदृश, परिभाषा विसदृश ।

शब्दकोश कहता है- जिसमें धारण करने की क्षमता होती है, वह मेधावी है ।

आगम के व्याख्याकार कहते हैं- जो मर्यादाशील है, वह मेधावी है ।

महावीर का वक्तव्य इनसे भिन्न है । वे आत्मा को सामने रखकर बोलते हैं इसलिए उनकी बात शब्दकोश और परिभाषा ग्रन्थ से परे होती है ।

जिसमें धारणा की क्षमता है और जो मर्यादा के प्रति जागरूक है, किन्तु अरति की व्यथा से मुक्त नहीं है, महावीर कहते हैं- वह मेधावी नहीं है ।

जिसमें अरति को दूर करने की चेतना जागृत नहीं है, वह बहुत कुछ जानकर भी अज्ञ है । आत्मदर्शी उसे मेधावी कैसे मानेंगे ?

आत्मा में सहज सुख का अथाह समुद्र है ।

जो अपने कंठ में सुख की प्यास लिए घूम रहा है, 'पानी में मीन पियासी' को चरितार्थ कर रहा है, वह मेधावी कैसे होगा ?

इस सचाई को सामने रखकर, आत्मा के शिखर पर आरोहण कर महावीर ने कहा-

अरइं आउट्टे से मेहावी

जो अरति का निवर्तन करता है, वह मेधावी है ।

1 नवम्बर 1995
जैन विश्व भारती

मुक्ति इसी क्षण में

चक्षुष्मान् !

'तुम एक क्षण में मुक्त हो सकते हो'- आत्म साधक के लिए इससे अधिक सुन्दर और हृदयग्राही वचन कोई नहीं हो सकता।

साधना का मार्ग बहुत लंबा है, बहुत श्रम साध्य है, बहुत तपस्या से प्राप्य है।

यह दीर्घकाल का विकल्प उत्साह को कुछ मंद करता है।

इस अवस्था में यह स्वर कान में गूंजे- 'तुम क्षण भर में मुक्त हो सकते हो। कितना आह्लादकारी होता है वह पल। अनुभव की बात शब्द नहीं बता सकते।

यह वचन सशर्त है। तुम क्षण भर में मुक्त हो सकते हो, यदि अरति से मुक्त हो जाओ।

जिस क्षण अरति का निवर्तन, उसी क्षण मुक्ति। यह है जीवन-मुक्ति।

शरीर-मुक्त हमारे प्रत्यक्ष नहीं होता।
जीवन-मुक्त हमारे बीच रहता है।
उसकी एक झलक जीवन को संवारने के लिए पर्याप्त है।
उसका व्यवहार और आचरण सहज होता है।
उसमें से निकलता है नियम, अनुशासन और व्रत।

इस चिन्तन की समग्रता को प्रतिध्वनित कर रहा है महावीर का यह वचन—

खणंसि मुक्के।

तुम क्षण में मुक्त हो सकते हो।

1 दिसम्बर, 1995
जैन विश्व भारती

धर्म का अर्थ

चक्षुष्मान् !

धर्म का अर्थ है - सम्यक्, यथार्थ, सत्य।

सम्यकदर्शन में, सत्य की खोज में धर्म का रहस्य उद्घाटित होता है।

सत्य ही धर्म है और धर्म ही सत्य है। सत्य और धर्म को कभी वियुक्त नहीं किया जा सकता। अयथार्थवाद में धर्म को नहीं खोजा जा सकता।

धर्म का अर्थ है समता।

अनुकूल और प्रतिकूल- हर परिस्थिति में होने वाला मन का संतुलन और भावात्मक संतुलन।

मानसिक असंतुलन में धर्म को नहीं खोजा जा सकता।

धर्म का अर्थ है शमिता, शांति, मन की शांति, अंतरंग शांति।

अशांति में धर्म को नहीं खोजा जा सकता। इसीलिए कहा गया- जो बुद्ध हुए हैं और होंगे, उन सबका प्रतिष्ठान है शांति।

महावीर का संदेश है- सत्य का अनुसंधान करो, समता की साधना करो और शांति का अनुभव करो। उनके शब्दों में पढ़ें—

सोच्चा वई मेहावी पंडियाणं णिसामिया समियाए धम्मे आरिएहिं पवेदिते।

तीर्थंकरों ने सम्यक्, समता और शमिता में धर्म कहा है। आचार्य की इस वाणी को मेधावी साधक हृदयंगम करें।

1 जनवरी, 1996
जैन विश्व भारती

संधि को देखो

चक्षुष्मान् !

एक विधवा स्त्री से किसी ने पूछा- तुम इतनी प्रसन्न कैसे रहती हो ?

उसका उत्तर था - मैंने सारे छिद्रों को रोक दिया है। समुद्र उसी जलपोत को डुबोता है, जिसमें छिद्र हो जाते हैं। निश्छिद्र जलपोत समुद्र की छाती को चीरकर तट पर पहुंच जाता है। मैंने सब छिद्रों को बंद कर दिया है, इसलिए मुझे वैधव्य दुःखी नही बनाता। दरवाजा बंद है, धूल कैसे आएगी।

अध्यात्म का रहस्य है- संधि को देखो, विवर को देखो, जो विवर तुम्हें दुःखी बनाने के लिए दुःख की धूली को प्रवेश दे रहा है।

पहले छिद्र को जानो, फिर उसे रोकने का प्रयत्न करो।

शरीर में नौ छिद्र हैं, यह स्थूल अवधारणा है।

सूक्ष्म जगत् में प्रवेश करने पर पता चलता है-शरीर में हजारों-हजारों छिद्र हैं। वे छिद्र ही समस्या बने हुए हैं।

नीति का सूक्त है-छिद्र बहुत अनर्थ पैदा करते हैं-***छिद्रेष्वनर्थाः बहुलीभवन्ति।***

महावीर ने इस सत्य के प्रति जागरूक किया। उनकी वाणी है-

संधिं समुप्पेहमाणस्स णत्थि मग्गे।

जो कर्म-विवर को देखता है, उसके लिए कोई मार्ग नहीं है।

1 फरवरी, 1996
जैन विश्व भारती

कहां है चेतना का आवास ?

चक्षुष्मान् !

आयतन दो हैं। एक आत्मा, दूसरा शरीर।

जो शरीर में रहता है, वह पदार्थ को सब कुछ मानता है। उसकी गति भोगवाद की दिशा में होती है। लोभ और संग्रह उसकी मुख्य प्रेरणा है।

जो आत्मा में रहता है, वह पदार्थ को जीवन-यात्रा के निर्वाह का साधन मानता है, सब कुछ नहीं मानता।

दृष्टिकोण का यह अंतर आवास का अंतर है।

स्वयं परीक्षण करो - चेतना का आवास कहाँ है ? शरीर में है या आत्मा में ?

यदि शरीर में है तो स्थान को बदलो। अपना आवास अपने घर में करो—आत्मा में करो।

आत्मा में रहने वाले व्यक्ति का प्रस्थान त्याग की दिशा में होता है। उसकी प्रेरणा है संतोष और अपरिग्रह - ममत्व का विसर्जन।

जो ममत्व का विसर्जन करता है, उसके लिए कोई मार्ग नहीं है। महावीर की वाणी है-

एगायतणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स णत्थि मग्गे विरयस्स त्ति।

जो एक आयतन में लीन है, ऐहिक ममत्व से मुक्त है, हिंसा से विरत है, उसके लिए कोई मार्ग नहीं है।

1 मार्च 1996
जैन विश्व भारती

पदार्थ से मुक्त बनो

चक्षुष्मान् !

पदार्थ दृश्य है, वह इह है, ऐहिक है।

आत्मा अदृश्य है, वह पर है, आत्मिक है।

इह के प्रति आसक्ति का अतिरेक है इसलिए स्व पर बना हुआ है।

पदार्थ की दुनिया में बहुत मार्ग बने हुए हैं, किन्तु कोई भी मार्ग कांटों से खाली नहीं है और मंजिल तक पहुंचाने वाला नहीं है।

स्पर्धा है, संघर्ष है, कलह और कदाग्रह की बहुलता है।

इस मार्ग पर चलने वाला कोई निर्बाध नहीं है, सुरक्षित नहीं है।

मार्ग होता है लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए किन्तु यह मार्ग है लक्ष्य की प्रतिकूल दिशा में ले जाने के लिए।

रहस्य की भाषा में कहा गया- इह अथवा पदार्थ से मुक्त बनो।

तुम स्वयं मुक्त हो, पदार्थ के संसर्ग में आकर बंध गए हो।

उस बंधन का अनुभव करो, मुक्ति की आशंसा करो फिर तुम्हारे लिए कोई मार्ग नही होगा।

यह स्वयं मंजिल है। मार्ग की कोई अपेक्षा नही है।

इसी सत्य को ध्यान में रखकर महावीर ने कहा-

इह विप्पमुक्कस्स णत्थि मग्गे विरयस्स।

जो ऐहिक ममत्व से मुक्त है, हिंसा से विरत है, उसके लिए कोई मार्ग नहीं है।

1 अप्रैल, 1996
जैन विश्व भारती

अप्रमाद और शांति

चक्षुष्मान् !

शान्ति खोज रहे हो तो अप्रमाद की खोज करो।

अप्रमाद खोज रहे हो तो शान्ति की खोज करो।

शान्ति और प्रमाद दोनों का सहावस्थान नहीं है।

तुम्हारा अप्रमाद ही तुम्हें शान्ति की ओर ले जा सकता है।

तुम अपने आपको भूलते जा रहे हो और शान्ति की खोज करते जा रहे हो- यह अपरिहार्य विरोधाभास है।

शान्ति को देखो, अप्रमाद—अपनी स्मृति अपने आप स्फुरित होगी।

शान्ति इसलिए उपलब्ध नहीं है कि प्रमाद है।

प्रमाद इसलिए है कि तुम मृत्यु को नहीं देख रहे हो।

तुम्हारी आत्म-विस्मृति तुम्हारी चेतना के लिए आवरण बन रही है इसलिए तुम सचाई को स्वीकार नहीं कर रहे हो। मरणधर्मा शरीर में रहकर भी अमर की तरह व्यवहार कर रहे हो।

यह अमरत्व की मिथ्या कल्पना प्रमाद की विष-वल्ली को और अधिक बढ़ा रही है।

प्रमाद की समस्या को सुलझाने के लिए भगवान महावीर ने कहा- शान्ति की प्रेक्षा करो, मृत्यु की प्रेक्षा करो, अनित्य की प्रेक्षा करो, अप्रमाद (जागरूकता) अपने आप फलित होगा।

संति मरणं संपेहाए, भेउरधम्मं संपेहाए।

1 मई 1996
जैन विश्व भारती

संधि-दर्शन

चक्षुष्मान् !

साधना का एक सूत्र है - संधि-दर्शन।

हम जानते हैं - श्वास भीतर जा रहा है, बाहर आ रहा है। हम श्वास को जान रहे है किन्तु श्वास के भीतर जाने और बाहर आने के बीच का जो संधि क्षण है, उसे नहीं जान पा रहे हैं।

हम जानते हैं-हृदय धड़क रहा है किन्तु दो धड़कनों के बीच जो संधि का क्षण है अथवा विश्राम का क्षण है, उसे नहीं जान पा रहे है।

जो व्यक्ति इन्द्रिय विषयों में लीन रहता है, वह संधि को नहीं जान पाता।

संधि को वही जान पाता है, जो इन्द्रिय विषयों से उपरत होता है, विरत होता है, प्रवृत्ति की यात्रा में भी निवृत्ति का अनुभव करता है।

शरीर में अनेक संधि स्थल हैं। हाथ, पैर आदि के जोड़ों को जानते है, किन्तु जहां चैतन्य की सघनता है, प्राण केन्द्रीभूत हैं, उन सन्धियों को हम नहीं जानते। उन्हें मन, वाणी और शरीर की गुप्ति के क्षणों में ही जाना जा सकता है।

उस व्यक्ति ने संधि को देखा है, जिसने संयम और अप्रमाद की साधना की है।

भगवान महावीर का वचन है—

एत्थोवरए तं झोसमाणे अयं संधीति अदक्खु।

जो आरंभ और इन्द्रिय विषयों से उपरत है, अनारंभ और निवृत्ति की साधना करता है, उसने संधि को देखा है।

1 जून, 1996
जैन विश्व भारती

रहस्यपूर्ण सूत्र

चक्षुष्मान् !

उठो, प्रमाद मत करो- यह सीधा सरल उपदेश है।

उठ गए हो अब प्रमाद मत करो- यह रहस्यपूर्ण सूत्र है।

एक बार उठा और पराक्रम का द्वार बंद हो गया। त्थित अनुत्थित बन सकता है।

मोह कर्म की सत्ता विद्यमान है। क्या पराक्रम को छोड़क सके आसन को हिला सकोगे ? कभी संभव नहीं है।

हाथ हिलाते रहो, शैवाल को हटाते रहो, आकाश-दश होता रहेगा।

हाथ को विश्राम मिलता है, शैवाल पुनः छा जाता है क्या आकाश-दर्शन बंद नहीं होगा।

इस रहस्य को समझाने के लिए महावीर ने कहा- उठ गए अब प्रमाद मत करो।

उट्ठिए णो पमायए

1 जुलाई, 1996
जैन विश्व भारती

अप्रमाद से होता है प्रमाद का विलय

चक्षुष्मान् !

विष विष का औषध और कांटे से कांटे का उद्धार- यह सत्य है पर सार्वभौम नहीं।

सापेक्ष सत्य की सीमा का ज्ञान हो तो आदमी उलझता नहीं।

सापेक्ष को निरपेक्ष मान लेने पर सत्य असत्य को जन्म दे देता है।

प्रमाद से प्रमाद का अंत नहीं होता और प्रमाद से प्रमाद कृत बंधन का अंत नहीं होता- यह आध्यात्मिक सत्य है।

काम कथा और भोजन की कथा प्रमाद है।

जैसे-जैसे इनकी पुनरावृत्ति होगी वैसे-वैसे काम और भोजन की आसक्ति बढ़ती जाएगी।

उस आसक्ति को कम करने का उपाय है धर्म कथा, वैराग्य की कथा।

प्रमाद कथा का प्रतिपक्ष है धर्म कथा।

राग-कथा का प्रतिपक्ष है वैराग्य कथा।

वह अप्रमाद है। उसके द्वारा ही प्रमाद को निरस्त किया जा सकता है।

भगवान महावीर का अनुभव है—

एवं से अप्पमाएणं विवेगं किट्टति वेयवी।

ज्ञानी मनुष्य जानता है—प्रमाद का विलय अप्रमाद से होता है।

1 अगस्त, 1996
जैन विश्व भारती

मौलिक अधिकार का उल्लंघन न करें

चक्षुष्मान् !

जीने की इच्छा एक मौलिक मनोवृत्ति है।

यह पूरे जीव लोक में समान है।

इच्छा की विचित्रता होती है। सब में इच्छाएं समान नहीं होती। किन्तु जीने की इच्छा सब जीवों में समान है।

इस सचाई को खोजने के बाद अध्यात्म की भूमिका से यह घोषणा की गई- सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता।

एक छोटे से छोटा क्रीड़ा भी जीने के लिए प्रयत्न करता है।

उस प्रयत्न की अन्तर्ध्वनि है- किसी व्यक्ति को किसी भी प्राणी की जीने की इच्छा को कुचलने का अधिकार नहीं है।

मानवाधिकार का अभियान चलाने वालों की सफलता इस पर निर्भर है कि सब जीवों को जीने का अधिकार है।

जीव-मात्र की इच्छा के प्रति बरती जाने वाली लापरवाही क्रूरता पैदा करती है। मानवाधिकार का उल्लंघन उसी क्रूरता की वेदी पर होता है।

इस परिप्रेक्ष्य में महावीर का यह सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है—लोक की संधि को जानकर, जीने की इच्छा प्राणी मात्र का मौलिक अधिकार है, यह समझकर आचरण और व्यवहार का निर्धारण करो—

संधिं लोगस्स जाणित्ता

सभी प्राणी जीना चाहते हैं इसलिए किसी के मौलिक अधिकार का उल्लंघन न करें।

1 सितम्बर, 1996
जैन विश्व भारती

भय है प्रमत्त को

चक्षुष्मान् !

प्रमत्त और प्रमाद- ये दोनों पद अध्यात्म की सीमा में नहीं है।

उसकी सीमा में दो पदों को बहुत प्रतिष्ठा मिली है, वे हैं अप्रमत्त और अप्रमाद।

राग और द्वेष के आवेश से आविष्ट व्यक्ति प्रमत्त है। राग और द्वेष का आवेश व्यक्त होता है तब प्रमत्त की आंखों में प्रमाद का नशा छा जाता है।

मदिरा कुछ लोग पीते हैं, कुछ नहीं पीते।

प्रमाद भीतरी मदिरा है। उससे बहुत कम लोग बच पाते हैं।

वे ही बच पाते हैं, जो इसमें भय का साक्षात्कार कर लेते हैं।

प्रमत्त को भय और अप्रमत्त को अभय- इसमें बाहरी भय का संकेत नहीं है। इसमें इंगित है आंतरिक भय की ओर।

उसका सारांश वक्तव्य है- जब तक चेतना स्व के प्रति जागरूक न बन जाए तब तक अभय का विकास नहीं हो सकता।

पदार्थ के प्रति जागरूक रहने वाला व्यक्ति चारों ओर भय से घिरा रहता है।

इसी सत्य को अनावृत करने के लिए महावीर ने कहा-

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अपमत्तस्स णत्थि भयं।

प्रमत्त को सब ओर से भय होता है। अप्रमत्त को कहीं से भी भय नहीं होता।

1 अक्टूबर, 1996
जैन विश्व भारती

दोहरी मूर्खता

चक्षुष्मान् !

आचार्य पढ़ा रहे हैं। शिष्य पढ़ रहा है। उसने पाठ का अशुद्ध उच्चारण किया।

आचार्य—तुम गलत उच्चारण कर रहे हो।

शिष्य—आपने ऐसा ही बताया था।

आचार्य—तुमने प्रमाद किया, ध्यानपूर्वक नहीं सुना, यह तुम्हारी पहली मूर्खता है और सावधान करने पर अपने प्रमाद को स्वीकार नहीं कर रहे हो, यह तुम्हारी दूसरी मूर्खता है।

व्यवहार की भूमिका में पहला प्रमाद दूसरे प्रमाद को निमंत्रण देता है।

भगवान् महावीर ने इस भूमिका को सामने रखकर ही प्रवचन किया। वह जीवन की अनेक घटनाओं पर लागू होता है। उनकी वाणी है—

कट्टु एवं अविजाणओ, बितिया मंदस्स बालया।

जो अकरणीय का आसेवन कर लेता है और पूछने पर 'मैंने नहीं किया' यह कहकर अस्वीकार कर देता है, यह उस मंद मति की दोहरी मूर्खता है।

1 नवम्बर, 1996
जैन विश्व भारती

जागता है ज्ञानी

चक्षुष्मान् !

कौन सो रहा है और कौन जाग रहा है ?

प्रश्न चिरंतन है। उत्तर भी चिरंतन है।

उस चिरंतन को नए संदर्भ में समझने का प्रयत्न करना जरूरी है।

जो मनुष्य अपनी सुख-सुविधा के लिए दूसरों को पीड़ा देता है, सताता है, सतप्त करता है और मार डालता है, वह अज्ञानी है।

अज्ञानी आदमी सो रहा है।

दिन में भी सो रहा है, धोली दुपहरी में भी सो रहा है।

उसके लिए जैसा दिन वैसी रात और जैसी रात वैसा दिन। दोनों समान।

जो मनुष्य सब जीवों के प्रति आत्म-तुल्य व्यवहार करता है, अपनी तुला से तोलता है और अपने मीटर से नापता है, शरीर, जाति, वर्ण आदि बाहरी परिवेशों से मुक्त होकर अपनी और अन्य की आत्मा में समानता की अनुभूति करता है, वह ज्ञानी है।

वह चौबीस घंटें जागता है। ज्ञानी नींद में भी जागता है, रात में भी जागता है।

इसी सच्चाई को अभिव्यक्त करने के लिए महावीर ने कहा—

सुत्ता अमुणिणो सया, मुणिणो सया जागरंति

अज्ञानी सदा सोते हैं, ज्ञानी सदा जागते हैं।

1 दिसम्बर, 1996
जैन विश्व भारती

कौन करता है दुःख का सृजन

चक्षुष्मान् !

हम दुःख को जानते हैं।

जो प्रतिकूल संवेदन है, वह दुःख है—इस परिभाषा को भी जानते हैं।

इसका निष्कर्ष है- हम व्यवहार को जानते हैं, वास्तविकता को नहीं जानते।

क्या दुःख को पैदा करने वाला तत्त्व दुःख नहीं है ?

क्या उसके बिना प्रतिकूल संवेदन पैदा होता है ?

यदि होता है तो इस दुनिया में कोई सुखी हो ही नहीं सकता।

अध्यात्म की सीढ़ियों पर आरोहण करने वाला प्रतिकूल परिस्थिति में भी दुःखी नहीं बनता और इसलिए नहीं बनता कि उसने दुःख पैदा करने वाले दुःख को क्षीण कर दिया।

प्रतिकूल संवेदन अहित का सृजन करता है, यह नियम नहीं है। किन्तु दुःख का बीज अथवा कर्म अहित का सृजन करता है, यह सचाई है।

इसी सचाई को प्रकट करने के लिए भगवान् महावीर ने कहा—

लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं।

तुम जानो—इस लोक में दुःख अहित के लिए होता है।

1 जनवरी, 1997
सुजानगढ़

अहेतुक नहीं है आतुरता

चक्षुष्मान् !

आतुरता एक मनोदशा है।

कोई व्यक्ति कामातुर है और कोई रोगातुर।

तुम ध्यान से देखो- आगे, पीछे, दाए, बाएं आतुरता की एक श्रृंखला मिलेगी।

आतुरता अहेतुक नहीं है। उसकी जन्म भूमि प्रमाद है। यदि हमारी दुनिया में आतुरता नहीं होती तो अप्रमत्त रहने की बात बुद्धि से परे नहीं होती।

इन्द्रिय चेतना मनुष्य को प्रमाद की ओर ले जाती है।

राग और द्वेष स्वयं प्रमाद हैं।

प्रमाद ने मानवीय मस्तिष्क को विक्षेप दिया है।

विक्षेप ने आतुरता पैदा की है।

आतुरता ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है।

इन सारी स्थिति को देखकर द्रष्टा ने कहा—अप्रमत्त रहो। तुम स्वयं प्रमाद और उसने उत्पन्न आतुरता को नहीं देखोगे तब तक अप्रमत्त रहना कठिन होगा।

इसीलिए महावीर ने कहा—

पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए।

सुप्त मनुष्यों को आतुर देखकर वीर पुरुष निरन्तर अप्रमत्त रहे।

1 फरवरी, 1997
चाड़वास

दुःख है संवेदन में

चक्षुष्मान् !

सुख और दुःख अहेतुक नहीं हैं।

सुख का भी हेतु है और दुःख का भी हेतु है।

एक आदमी तत्ववेत्ता के पास गया, बोला-'दुःख क्यों है ? मुझे कोई आदमी नहीं मिला, जो दुःखी न हो, प्रतिकूल संवेदन न करता हो।'

तत्ववेत्ता-'क्या समाज में हिंसा नहीं है ?

'है।'

'हिंसा दुःख का हेतु है। हिंसा हो और दुःख न हो, यह संभव नहीं है।'

भय, आतंक, हत्या—ये सारे दुःख हिंसा से जन्मे हुए हैं।

हिंसा का संस्कार अतीत और दीर्घकालीन अतीत से जुड़ा हुआ है। वह भी दुःख पैदा करता है।

दुःख घटना में नहीं है, वह संवेदन में है।

हिंसा का संस्कार प्रतिकूल संवेदन पैदा करता है और आदमी दुःखी बन जाता है।

इस तत्व दर्शन को ध्यान में रखकर महावीर ने कहा-

आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा।

दुःख हिंसा से उत्पन्न है, यह जानकर मनुष्य हिंसा का परित्याग करे।

1 अप्रैल, 1997
कालू

अमर है आत्मा का विदेह अस्तित्व

चक्षुष्मान् !

अमर होने की आकांक्षा मनुष्य की शाश्वत आकांक्षा है।

कोई भी देहधारी आज तक अमर हुआ नहीं और यह भविष्य वाणी करना एक जटिल काम है—कोई भी देहधारी अमर होगा।

देह एक पौद्गलिक रचना है और कोई भी पौद्गलिक रचना नित्य नहीं है।

अमर वह हो सकता है जो मरण के हेतुओं को आशंका की दृष्टि से देखता है।

जिसमें देहासक्ति है, देहाध्यास है वह अमर की भांति आचरण करता है—*अमरायई महासड्ढी।*

विदेह की साधना करने वाला अमरत्व की दिशा में प्रस्थान कर सकता है।

देह मरण-धर्मा है।

आत्मा अमर है।

उसके विदेह अस्तित्व की कभी विच्युति नहीं होती।

महावीर की वाणी में यह सत्य उजागर हुआ है—

माराभिसंकी मरणा पमुच्चति।

जो मृत्यु से आशंकित रहता है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है।

1 जून, 1997
गंगाशहर

दुर्लंध्य है काम

चक्षुष्मान् !

कामना की शक्ति अमाप्य है। वह सबका अतिक्रमण करती है। उसका अतिक्रमण करना हर किसी के वश की बात नहीं है। हर प्राणी उससे संचालित है। वह प्राणी का लक्षण बनी हुई है।

जिसमें इच्छा है, कामना है, वह प्राणी है।

भूख की इच्छा होती है तब खाता है।

पानी पीने की इच्छा होती है तब पानी पीना पडता है।

प्रत्येक इन्द्रिय की अपनी-अपनी कामना है।

इन्द्रिय चेतना के स्तर पर जीने वाला व्यक्ति उनकी इच्छा पूर्ति कर संतुष्टि का अनुभव करता है।

कामना की अधीनता सबको मान्य है।

इस व्यवहार सत्य को सामने रखकर महावीर ने कहा- जिसे आत्मा की अनुभूति प्राप्त हो जाती है, वह व्यक्ति काम का अतिक्रमण कर सकता है, हर कोई नहीं कर सकता।

दुपरिचया इमे कामा, णो सुजहा अधीरपुरिसेहिं।

अधीर पुरुष के लिए काम दुर्लंध्य है।

कामा दुरतिक्कमा

काम का अतिक्रमण करना सरल नहीं है।

1 जुलाई, 1997
गंगाशहर

क्या बढ़ सकता है जीवन ?

चक्षुष्मान् !

विज्ञान का युग है। जीनेटिक इंजीनियरिंग का बहुत विकास हो रहा है। छिन्न आयुष्य को सांधने अथवा जीवन को बढ़ाने का कोई सूत्र खोज निकाले तो नए सिद्धांत की स्थापना करनी होगी।

अब तक का स्वीकृत सत्य यह है—छिन्न आयुष्य बढ़ाने का कोई सूत्र ज्ञात नहीं है।

आयुष्य घट सकता है, यह सब लोग जानते है।

आयुष्य बढ़ सकता है, यह सम्मत नहीं है।

जीवन की एक अवधि है। उसे सब जानते हैं।

मोह इतना धना है कि जानते हुए भी हर आदमी इस सचाई को झुठलाने का प्रयत्न कर रहा है और अपने आपको अमर मान रहा है।

इस भ्रांति को तोड़ने के लिए भगवान महावीर ने कहा—

जीवियं दुप्पडिवूहणं ।

छिन्न आयुष्य को सान्धा नहीं जा सकता, जीवन को बढ़ाया नहीं जा सकता।

1 अगस्त, 1997
गंगाशहर

मानवीय स्वभाव

चक्षुष्मान् !

कामना और प्राणी- दोनों में घनिष्ट संबंध है।

प्राणी हो और कामना न हो, यह कब संभव है ?

धर्म के उपदेष्टा उपदेश देते रहते हैं-'कामना का परित्याग करो।'

बहुत कम सार्थक हो रहा है यह उपदेश।

कामना का चीर बढ़ता ही चला जा रहा है। ऐसा क्यों होता है ? उसका सूत्र प्रस्तुत सूत्र में है, जिसमें कोई उपदेश नहीं है, केवल मानवीय स्वभाव का चित्रण है।

यदि बदलना है तो पहले सचाई को स्वीकार करो।

महावार की वाणी में सत्य की स्वीकृति स्पष्ट है—

कामकामी खलु अयं पुरिसे।

यह पुरुष काम-कामी है—मनोज्ञ शब्द और रूप की कामना करने वाला है।

1 सितम्बर, 1997
तेरापंथ भवन
गंगाशहर

सरल नहीं है काम का अतिक्रमण

चक्षुष्मान् !

काम का अतिक्रमण करना सरल नहीं है। इसका हेतु साफ है। शरीर के ऊपर मैल लग गया, उसकी सफाई बहुत कठिन नहीं है किन्तु शरीर के भीतर की सफाई करना सरल नहीं है।

काम शरीर के भीतर है।

आगे चलें तो मन के भीतर हैं, और उससे आगे जाएं तो भाव के भीतर है।

उससे भी आगे जाने पर पता चलेगा—वह सूक्ष्मतम शरीर-कर्मशरीर के भीतर है।

यह सूक्ष्म से स्थूल बनकर बाहरी जगत् में आता है और स्थूल को प्रभावित करता है।

उसे स्थूल से सूक्ष्म की ओर गए बिना प्रभावित नहीं किया जा सकता इसीलिए काम का अतिक्रमण करना सरल नहीं है।

यह उद्घोष बहुत यथार्थ है। इस उद्घोष के आधार पर ही भगवान् महावीर ने कहा—

कामकामी खलु अयं पुरिसे।

1 दिसम्बर, 1997
जैन विश्व भारती

लोक की विपश्यना करो

चक्षुष्मान् !

लोक की विपश्यना करो, अपने शरीर की विपश्यना करो।

लोक को तीन भागों में विभक्त कर लो-अधोलोक, उर्ध्वलोक और तिर्यक् लोक या मध्यलोक।

शक्ति का विकास चाहते हो तो अधोलोक की विपश्यना करो।

ज्ञान का विकास चाहते हो, चेतना के विविध प्रकोष्ठों को जागृत करना चाहते हो तो उर्ध्वलोक की विपश्यना करो।

प्राण ऊर्जा का विकास चाहते हो तो मध्य लोक की विपश्यना करो।

विपश्यना करने की विधि को जानो।

चक्षु को संयत कर त्राटक अथवा अनिमेष प्रेक्षा का प्रयोग करो, लोक की विपश्यना करो।

विपश्यना करने वाला लोक के अधोभाग को जान लेता है, ऊर्ध्व भाग को जान लेता है और मध्य भाग को भी जान लेता है।

महावीर की इस वाणी का मर्म समझने का प्रयत्न करो—

आयतचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहो भागं जाणई,
उड्ढं भागं जाणई तिरियं भागं जाणई।

संयत चक्षु लोकदर्शी होता है। वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है, तिरछे भाग को जानता है।

1 फरवरी, 1998
नोखा

काम का जाल

चक्षुष्मान् !

यह जन्म-मरण का चक्र कैसे चल रहा है ?

प्राण एक योनि के बाद दूसरी योनि में कैसे पैदा होता है ?

इस जटिल प्रश्न का सरल सा उत्तर है- जन्म मरण के चक्र का हेतु है काम।

काम कर्म का आकर्षण कर रहा है और कर्म एक गति से दूसरी गति में जाने का वाहन बन रहा है।

प्राणी काम के जाल में फंसा हुआ है।

किसी भी मछुआरे के पास इतना मजबूत जाल नही है।

इससे मुक्त होने का उपाय है अनासक्ति के बिन्दु को पकड़ना।

उसकी पकड़ सचाई को समझने के बाद ही हो सकती है।

महावीर की वाणी में उस सचाई का सूत्र है—

गढिए अणुपरियट्टमाणे।

काम में आसक्त पुरुष अनुपरिवर्तन कर रहा है।

1 अप्रेल, 1998
जैन विश्व भारती

जैसा भीतर वैसा बाहर

चक्षुष्मान् !

शरीर को देखने के दो कोण हैं, एक सौंदर्य और दूसरा अशौच।

सरसता और कला पक्ष में शरीर के सौंदर्य का आलक्षिक वर्णन किया जाता है। प्रत्येक भाषा के काव्य इस वर्णन से भरे पड़े हैं।

कामासक्ति को कम और वैराग्य का संवर्धन करने के लिए शरीर के अशौच पक्ष को उजागर करने की परंपरा रही है।

उसका एक निदर्शन है प्रस्तुत सूत्र। उसका अभिमत है-

शरीर जैसा भीतर में अशुचि है, वैसा बाहर में अशुचि है।

जैसा बाहर में अशुचि है, वैसा भीतर में भी अशुचि है।

इसमें अनेक स्रोत हैं जिनके द्वारा अशुचि प्रवाहित हो रही है।

आचारांग की वाणी है—

जहा अंतो तहा बाहि
जहा बाहि तहा अंतो
अंतो अंतो पूति देहंतराणि,
पासति पुढोवि सवंताइं ।

यह शरीर जैसा भीतर है, वैसा बाहर है।

जैसा बाहर है, वैसा भीतर है।

पुरुष इस अशुचि शरीर के भीतर से भीतर पहुंच कर शरीर-धातुओं को देखता है और झरते हुए विविध स्रोतों को भी देखता है। इसलिए साधक को देहासक्ति और कामासक्ति से दूर रहना चाहिए।

1 मई 1998
जैन विश्व भारती

मतिमान् बनो

चक्षुष्मान्

मतिमान् बनो।

मतिमान् वह होता है, जिसमें परिज्ञा होती है, जो जानता है, हेय और उपादेय का विवेक करता है, जिसमें त्याग करने की क्षमता होती है, जो हेय को त्याग देता है।

योग आसक्ति का जनक है।

आसक्ति दुःख का ताना-बाना बुनती है।

कुछ व्यक्ति हेय को छोड़कर फिर उसे पाने के लिए ललचाते हैं।

इस मानसिक दुर्बलता को सामने रखकर भगवान महावीर ने कहा—

से मइयं परिण्णाय
मा य हु लालं पच्चासी।

मतिमान् परिज्ञा करे, जाने और हेय को त्यागे। त्यक्त के प्रति पुनः न ललचाए, लाल को न चाटे।

9 जून, 1998
जैन विश्व भारती

अग्रवाल प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स (जयपुर) © 572201